1 OM

SAI * SRI

SAI *

* JAI JAI SAI

2. S

R

I

SAT CHITANAND

S A T G U R U

SAINATH MAHARAJ KI JAI

अध्याय - २३

योग और प्याज, शामा का सर्पविष उतारना, विषूचिका (हैजा) निवारणार्थ नियमों का उल्लंघन, गुरु भक्ति की कठिन परीक्षा।

प्रस्तावना

वस्तुतः मनुष्य त्रिगुणातीत (तीन गुण अर्थात् सत्व-रज-तम) है तथा माया के प्रभाव से ही उसे अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप की विस्मृति हो, ऐसा भासित होने लगता है कि मैं शरीर हूँ। दैहिक बुद्धि के आवरण के कारण ही वह ऐसी धारणा बना लेता है कि मैं ही कर्त्ता और उपभोग करने वाला हूँ और इस प्रकार वह अपने को अनेक कष्टों में स्वयं फँसा लेता है। फिर उसे उससे छुटकारे का कोई मार्ग नहीं सूझता। **मुक्ति का एकमात्र उपाय है - गुरु के श्री चरणों में अचल प्रेम और भक्ति।** सबसे महान् अभिनयकर्त्ता भगवान् साई ने भक्तों को पूर्ण आनन्द पहुँचाकर उन्हें निज-स्वरूप में परिवर्तित कर लिया है। उपर्युक्त कारणों से **हम साईबाबा को ईश्वर का ही अवतार मानते हैं।** परन्तु वे सदा यही कहा करते थे कि "मैं तो ईश्वर का दास हूँ।" अवतार होते हुए भी मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिये तथा अपने वर्ण के कर्त्तव्यों को किस प्रकार निबाहना चाहिए, इसका उदाहरण उन्होंने लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होंने किसी प्रकार भी दूसरे से स्पर्द्धा नहीं की और न ही किसी को कोई हानि ही पहुँचाई। जो सब जड़ और चेतन पदार्थों में ईश्वर के दर्शन करता हो, उसको विनयशीलता ही उपयुक्त थी। उन्होंने किसी की उपेक्षा या अनादर नहीं किया। वे सब प्राणियों में भगवद्दर्शन करते थे। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि "मैं अनल हक्क (सोऽहम्) हूँ।" वे सदा यही कहते थे कि "मैं तो यादे हक्क (दासोऽहम्) हूँ।" **अल्ला मालिक" सदा उनके होठोंपर था।** हम अन्य संतों से परिचित नहीं हैं और न हमें यही ज्ञात है कि वे किस प्रकार आचरण किया करते हैं अथवा उनकी दिनचर्या इत्यादि क्या है। ईश-कृपा से केवल हमें इतना ही ज्ञात है कि वे अज्ञान और बद्ध जीवों

के निमित्त स्वयं अवतीर्ण होते हैं। **शुभ कर्मों के परिणामस्वरूप ही हममें सन्तों की कथायें और लीलायें श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं।** अब हम मुख्य कथा पर आते हैं।

योग और प्याज

एक समय कोई एक योगाभ्यासी नानासाहेब चाँदोरकर के साथ शिरडी आया। उसने पातंजलि योगसूत्र तथा योगशास्त्र के अन्य ग्रन्थों का विशेष अध्ययन किया था, परन्तु वह व्यावहारिक अनुभव से वंचित था। मन एकाग्र न हो सकने के कारण वह थोड़े समय के लिये भी समाधि न लगा सकता था। यदि साईबाबा की कृपा प्राप्त हो जाय तो उनसे अधिक समय तक समाधि अवस्था प्राप्त करने की विधि ज्ञात हो जायेगी, इस विचार से वह शिरडी आया और जब मसजिद में पहुँचा तो साईबाबा को प्याजसहित रोटी खाते देख उसे ऐसा विचार आया कि यह कच्ची प्याजसहित सूखी रोटी खाने वाला व्यक्ति मेरी कठिनाइयों को किस प्रकार हल कर सकेगा? साईबाबा अन्तर्ज्ञान से उसका विचार जानकर तुरन्त नानासाहेब से बोले कि "ओ नाना! जिसमें प्याज हज़म करने की शक्ति है, उसको ही उसे खाना चाहिए, अन्य को नहीं।" इन शब्दों से अत्यन्त विस्मित होकर योगी ने साईचरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। शुद्ध और निष्कपट भाव से अपनी कठिनाइयाँ बाबा के समक्ष प्रस्तुत करके उनसे उनका हल प्राप्त किया और इस प्रकार संतुष्ट और सुखी होकर बाबा के दर्शन और उदी लेकर वह शिरडी से चला गया।

शामा की सर्पदंश से मुक्ति

कथा प्रारंभ करने से पूर्व हेमाडपंत लिखते हैं कि जीव की तुलना पालतू तोते से की जा सकती है, क्योंकि दोनों ही बद्ध हैं। एक शरीर में तो दूसरा पिंजड़े में। दोनों ही अपनी बद्धावस्था को श्रेयस्कर समझते हैं। परंतु यदि हरिकृपा से उन्हें कोई उत्तम गुरु मिल जाय और वह उनके ज्ञानचक्षु खोलकर उन्हें बंधन मुक्त कर दे तो उनके जीवन का स्तर उच्च हो जाता है, जिसकी तुलना में पूर्व संकीर्ण स्थिति सर्वथा तुच्छ ही थी।

गत अध्याय में किस प्रकार श्री. मिरीकर पर आने वाले संकट की पूर्वसूचना देकर उन्हें उससे बचाया गया, इसका वर्णन किया जा चुका है। पाठकवृन्द अब उसी प्रकार की और एक कथा श्रवण करें। एक बार शामा को विषधर सर्प ने उसके हाथ की उँगली में डस लिया। समस्त शरीर में विष का प्रसार हो जाने के कारण वे अत्यन्त कष्ट का अनुभव करके क्रंदन करने लगे कि अब मेरा अन्तकाल समीप आ गया है। उनके इष्ट मित्र उन्हें भगवान विठोबा के पास ले जाना चाहते थे, जहाँ इस प्रकार की समस्त पीड़ाओं

की योग्य चिकित्सा होती है; परन्तु शामा मसजिद की ओर ही दौड़ा-अपने विठोबा श्री साईबाबा के पास। जब बाबा ने उन्हें दूर से आते देखा तो वे झिड़कने और गाली देने लगे। वे क्रोधित होकर बोले – "अरे ओ नादान कृतघ्न बम्मन*! ऊपर मत चढ़। सावधान, यदि ऐसा किया तो।" और फिर गर्जना करते हुए बोले, "हटो, दूर हट, नीचे उतर।" श्री साईबाबा को इस प्रकार अत्यंत क्रोधित देख शामा उलझन में पड़ गया और निराश होकर सोचने लगा कि केवल मसजिद ही तो मेरा घर है और साईबाबा मात्र असहायोंके आश्रयदाता हैं और जब वे ही इस प्रकार मुझे यहाँ से भगा रहे हैं तो मैं अब किसकी शरण में जाऊँ? उसने अपने जीवन की आशा ही छोड़ दी और वहीं शान्तिपूर्वक बैठ गया। थोड़े समय के पश्चात् जब बाबा पूर्ववत् शांत हुए तो शामा ऊपर आकर उनके समीप बैठ गया। तब बाबा बोले, "डरो नहीं। तिल मात्र भी चिन्ता मत करो। दयालु फकीर तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा। घर जाकर शान्ति से बैठो और बाहर न निकलो। मुझपर विश्वास कर निर्भय होकर चिन्ता त्याग दो।" उन्हें घर भिजवाने के पश्चात् ही पीछे से बाबा ने तात्या पाटील और काकासाहेब दीक्षित के द्वारा यह कहला भेजा कि वह इच्छानुसार भोजन करें; घर में टहलते रहें; लेटें नहीं और न शयन करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि आदेशों का अक्षरशः पालन किया गया और थोड़े समय में ही वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। इस विषय में केवल यही बात स्मरण योग्य है कि बाबा के शब्द (पंच अक्षरीय मंत्र-हटो, दूर हट, नीचे उतर) शामा को लक्ष्य करके नहीं कहे गये थे, जैसा कि ऊपर से स्पष्ट प्रतीत होता है, वरन् उस साँप और उसके विष के लिये ही यह आज्ञा थी (अर्थात् शामा के शरीर में विष न फैलाने की आज्ञा थी।) अन्य मंत्र शास्त्रों के विशेषज्ञों की तरह बाबा ने किसी मंत्र या मंत्रोक्त चावल या जल आदि का प्रयोग नहीं किया।

इस कथा और इसी प्रकार की अन्य कथाओं को सुनकर साईबाबा के चरणों में यह दृढ़ विश्वास हो जायगा कि यदि मायायुक्त संसार को पार करना हो तो केवल श्री साईचरणों का हृदय में ध्यान करो।

हैजा महामारी (विषूचिका)

एक बार शिरडी विषूचिका के प्रकोप से दहल उठी और ग्रामवासी भयभीत हो गये। उनका पारस्परिक सम्पर्क अन्य गाँव के लोगों से प्रायः समाप्त सा हो गया। तब गाँव

* यह साँप पिछले जन्म में बम्मन था, इसकी ओर यह संकेत है। साँप को ब्राह्मण माना भी जाता है।

के पंचों ने एकत्रित होकर दो आदेश प्रसारित किये। प्रथम-लकड़ी की एक भी गाड़ी गाँव में न आने दी जाय। द्वितीय - कोई भी बकरे की बलि न दे। इन आदेशों का उल्लंघन करने वाले को मुखिया और पंचों द्वारा दंड दिया जायगा। बाबा तो जानते ही थे कि यह सब केवल अंधविश्वास ही है और इसी कारण उन्होंने इन हैजा के आदेशों की कोई चिंता न की। जब ये आदेश लागू थे, तभी एक लकड़ी की गाड़ी गाँव में आयी। सबको ज्ञात था कि गाँव में लकड़ी का अधिक अभाव है, फिर भी लोग उस गाड़ीवाले को भगाने लगे। यह समाचार कहीं बाबा के पास तक पहुँच गया। तब वे स्वयं वहाँ आये और गाड़ी वाले से गाड़ी मसजिद में ले चलने को कहा। बाबा के विरुद्ध कोई चूँ-चपाट तक भी न कर सका। यथार्थ में उन्हें धूनी के लिए लकड़ियों की अत्यन्त आवश्यकता थी और इसीलिए उन्होंने वह गाड़ी मोल ले ली। एक महान् अग्निहोत्री की तरह उन्होंने जीवन भर धूनी को चैतन्य रखा। बाबा की धूनी दिनरात प्रज्वलित रहती थी और इसलिए वे लकड़ियाँ एकत्रित कर रखते थे।

बाबा का घर अर्थात् मसजिद सबके लिए सदैव खुली थी। उसमें किसी ताले चाभी की आवश्यकता न थी। गाँव के गरीब आदमी अपने उपयोग के लिए उसमें से लकड़ियाँ निकाल भी ले जाया करते थे, परंतु बाबा ने इस पर कभी कोई आपत्ति न की। बाबा तो सम्पूर्ण विश्व को ईश्वर से ओतप्रोत देखते थे, इसलिए उनमें किसी के प्रति घृणा या शत्रुता की भावना न थी। पूर्ण विरक्त होते हुए भी उन्होंने एक साधारण गृहस्थ का-सा उदाहरण लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया।

गुरुभक्ति की कठिन परीक्षा

अब देखिये, दूसरे आदेश की भी बाबा ने क्या दुर्दशा की। वह आदेश लागू रहते समय कोई मसजिद में एक बकरा बलि देने को लाया। वह अत्यन्त दुर्बल, बूढ़ा और मरने ही वाला था। उस समय मालेगाँव के फकीर पीरमोहम्मद उर्फ बड़े बाबा भी उनके समीप ही खड़े थे। बाबा ने उन्हें बकरा काटकर बलि चढ़ाने को कहा। श्री साईबाबा बड़े बाबा का अधिक आदर किया करते थे। इस कारण वे सदैव उनके दाहिनी ओर ही बैठा करते थे। सबसे पहले वे ही चिलम पीते और फिर बाबा को देते, बाद में अन्य भक्तों को। जब दोपहर को भोजन परोस दिया जाता, तब बाबा बड़े बाबा को आदरपूर्वक बुलाकर अपने दाहिनी ओर बिठाते और तब सब भोजन करते। बाबा के पास जो दक्षिणा एकत्रित होती, उसमें से वे ५० रुपये प्रतिदिन बड़े बाबा को दे दिया करते थे। जब वे लौटते तो बाबा भी उनके साथ सौ कदम तक जाया करते थे। उनका

इतना आदर होते हुए भी जब बाबा ने उनसे बकरा काटने को कहा तो उन्होंने अस्वीकार कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि बलि चढ़ाना व्यर्थ ही है। तब बाबा ने शामा से बकरे की बलि के लिये कहा। वे राधाकृष्ण माई के घर जाकर एक चाकू ले आये और उसे बाबा के सामने रख दिया। राधाकृष्णमाई को जब कारण का पता चला तो उन्होंने चाकू वापस मँगवा लिया। अब शामा दूसरा चाकू लाने के लिये गये, किन्तु बड़ी देर तक मसजिद में न लौटे। तब काकासाहेब दीक्षित की बारी आई। वह सोना सच्चा तो था, परन्तु उसको कसौटी पर कसना भी अत्यन्त आवश्यक था। बाबा ने उनसे चाकू लाकर बकरा काटने को कहा। वे साठेवाड़े से एक चाकू ले आये और बाबा की आज्ञा मिलते ही काटने को तैयार हो गये। उन्होंने पवित्र ब्राह्मण-वंश में जन्म लिया था और अपने जीवन में वे बलिकृत्य जानते ही न थे। यद्यपि हिंसा करना निंदनीय है, फिर भी वे बकरा काटने के लिये उद्यत हो गये। सब लोगों को आश्चर्य था कि बड़े बाबा एक यवन होते हुए भी बकरा काटने को सहमत नहीं हैं और यह एक सनातन ब्राह्मण बकरे की बलि देने की तैयारी कर रहा है। उन्होंने अपनी धोती ऊपर चढ़ा फेंटा कस लिया और चाकू लेकर हाथ ऊपर उठाकर बाबा की अन्तिम आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। बाबा बोले, "अब विचार क्या कर रहे हो? ठीक है, मारो।" जब उनका हाथ नीचे आने ही वाला था, तब बाबा बोले "ठहरो, तुम कितने दुष्ट हो? ब्राह्मण होकर तुम बकरे की बलि दे रहे हो?" काकासाहेब चाकू नीचे रख कर बाबा से बोले "आपकी आज्ञा ही हमारे लिये सब कुछ है, हमें अन्य आदेशों से क्या? हम तो केवल आपका ही सदैव स्मरण तथा ध्यान करते हैं और दिन रात आपकी आज्ञा का ही पालन किया करते हैं। हमें यह विचार करने की आवश्यकता नहीं कि बकरे को मारना उचित है या अनुचित? और न हम इसका कारण ही जानना चाहते हैं। हमारा कर्त्तव्य और धर्म तो निःसंकोच होकर गुरु की आज्ञा का पूर्णतः पालन करने में है।" तब बाबा ने काकासाहेब से कहा कि "मैं स्वयं ही बलि चढ़ाने का कार्य करूँगा।" तब ऐसा निश्चित हुआ कि तकिये के पास जहाँ बहुत से फकीर बैठते हैं, वहाँ चलकर इसकी बलि देनी चाहिए। जब बकरा वहाँ ले जाया जा रहा था, तभी रास्ते में गिर कर वह मर गया।

भक्तों के प्रकार का वर्णन कर श्री. हेमाडपंत यह अध्याय समाप्त करते हैं। भक्त तीन प्रकार के हैं - (१) उत्तम (२) मध्यम और (३) साधारण। प्रथम श्रेणी के भक्त वे हैं, जो अपने गुरु की इच्छा पहले से ही जानकर अपना कर्त्तव्य मान कर सेवा करते हैं। द्वितीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा मिलते ही उसका तुरन्त पालन करते हैं। तृतीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा सदैव टालते हुए पग-पग पर त्रुटि

किया करते हैं। भक्तगण यदि अपनी जागृत बुद्धि और धैर्य धारण कर दृढ़ विश्वास स्थिर करें तो निःसन्देह उनका आध्यात्मिक ध्येय उनसे अधिक दूर नहीं है। श्वासोच्छ्वास का नियंत्रण, हठ योग या अन्य कठिन साधनाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। जब शिष्य में उपर्युक्त गुणों का विकास हो जाता है और जब अग्रिम उपदेशों के लिये भूमिका तैयार हो जाती है, तभी गुरु स्वयं प्रगट होकर उसे पूर्णता की ओर ले जाते हैं। अगले अध्याय में बाबा के मनोरंजक हास्य-विनोद के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - २४

श्री बाबा का हास्य विनोद,
चने की लीला (हेमाडपंत), सुदामा की कथा, अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई की कथा।

प्रारम्भ

अगले अध्याय में अमुक-अमुक विषयों का वर्णन होगा, ऐसा कहना एक प्रकार का अहंकार ही है। जब तक अहंकार गुरुचरणों में अर्पित न कर दिया जाये, तब तक सत्यस्वरूप की प्राप्ति संभव नहीं। यदि हम निरभिमान हो जायें तो सफलता प्राप्त होना निश्चित ही है।

श्री साईबाबा की भक्ति करने से ऐहिक तथा आध्यात्मिक दोनों पदार्थों की प्राप्ति होती है और हम अपनी मूल प्रकृति में स्थिरता प्राप्त कर शांति और सुख के अधिकारी बन जाते हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिये कि वे आदरसहित श्री साईबाबा की लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करें। यदि वे इसी प्रकार प्रयत्न करते रहेंगे तो उन्हें अपने जीवन-ध्येय तथा परमानंद की सहज ही प्राप्ति हो जायेगी।

प्रायः सभी लोगों को हास्य प्रिय होता है, परन्तु हास्य का पात्र स्वयं कोई नहीं बनना चाहता। इस विषय में बाबा की पद्धति भी विचित्र थी। जब वह भावनापूर्ण होती तो अति मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद होती थी। इसीलिए भक्तों को यदि स्वयं हास्य का पात्र बनना भी पड़ता था तो उन्हें उसमें कोई आपत्ति न होती थी। श्री. हेमाडपंत भी ऐसा एक अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

चना लीला

शिरडी में बाजार प्रति रविवार को लगता है। निकटवर्ती ग्रामों से लोग आकर वहाँ रास्तों पर दूकानें लगाते और सौदा बेचते हैं। मध्याह्न के समय मसजिद लोगों से ठसाठस भर जाया करती थी, परन्तु इतवार के दिन तो लोगों की इतनी अधिक भीड़

होती कि प्रायः दम ही घुटने लगता था। ऐसे ही एक रविवार के दिन श्री. हेमाडपंत बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे। शामा बाबा के बाईं ओर व वामनराव बाबा के दाहिनी ओर थे। इस अवसर पर श्रीमान् बूटीसाहेब और काकासाहेब दीक्षित भी वहाँ उपस्थित थे। तब शामा ने हँसकर अण्णासाहेब से कहा कि "देखो, तुम्हारे कोट की बाँह पर कुछ चने लगे हुए-से प्रतीत होते हैं।" – ऐसा कहकर शामा ने उनकी बाँह स्पर्श की, जहाँ कुछ चने के दाने मिले।

जब हेमाडपंत ने अपनी बाईं कुहनी सीधी की तो चने के कुछ दाने लुढ़क कर नीचे भी गिर पड़े, जों उपस्थित लोगों ने बीन कर उठाये।

भक्तों को तो हास्य का विषय मिल गया और सभी आश्चर्यचकित होकर भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगे, परन्तु कोई भी यह न जान सका कि ये चने के दाने वहाँ आये कहाँ से और इतने समय तक उसमें कैसे रहे? इसका संतोषप्रद उत्तर किसी के पास न था, परन्तु इस रहस्य का भेद जानने को प्रत्येक उत्सुक था। तब बाबा कहने लगे कि "इन महाशय-अण्णासाहेब को एकांत में खाने की बुरी आदत है। आज बाजार का दिन है और ये चने चबाते हुए ही यहाँ आये हैं। मैं तो इनकी आदतों से भली भाँति परिचित हूँ और ये चने मेरे कथन की सत्यता के प्रमाण हैं। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?" हेमाडपंत बोले कि "बाबा, मुझे कभी भी एकांत में खाने की आदत नहीं है, फिर इस प्रकार मुझ पर दोषारोपण क्यों करते हैं? अभी तक मैंने शिरडी के बाजार के दर्शन भी नहीं किये तथा आज के दिन तो मैं भूल कर भी बाजार नहीं गया। फिर आप ही बताइये कि मैं ये चने भला कैसे खरीदता और जब मैंने खरीदे ही नहीं, तब उनके खाने की बात तो दूर की ही है। भोजन के समय भी जो मेरे निकट होते हैं, उन्हें उनका उचित भाग दिये बिना मैं कभी ग्रहण नहीं करता।"

बाबा – "तुम्हारा कथन सत्य है। परन्तु जब तुम्हारे समीप ही कोई न हो तो तुम या हम कर ही क्या सकते हैं? अच्छा, बताओ, क्या भोजन करने से पूर्व तुम्हें कभी मेरी स्मृति भी आती है? क्या मैं सदैव तुम्हारे साथ नहीं हूँ? फिर क्या तुम पहले मुझे ही अर्पण कर भोजन किया करते हो?"

शिक्षा

इस घटना द्वारा बाबा क्या शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, थोड़ा इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसका सारांश यह है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि द्वारा पदार्थों का

रसास्वादन करने के पूर्व बाबा का स्मरण करना चाहिए। उनका स्मरण ही अर्पण की एक विधि है। इन्द्रियाँ विषय पदार्थों की चिन्ता किये बिना कभी नहीं रह सकतीं। इन पदार्थों को उपभोग से पूर्व ईश्वरार्पण कर देने से उनकी आसक्ति स्वभावतः नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार समस्त इच्छायें, क्रोध और तृष्णा आदि कुप्रवृत्तियों को प्रथम ईश्वरार्पण कर गुरु की ओर मोड़ देना चाहिए। यदि इसका नित्याभ्यास किया जाय तो परमेश्वर तुम्हें कुवृत्तियों के दमन में सहायक होंगे। विषय के रसास्वादन के पूर्व वहाँ बाबा की उपस्थिति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। तब विषय उपभोग के उपयुक्त है या नहीं, यह प्रश्न उपस्थित हो जायेगा और तब अनुचित विषय का त्याग करना ही पड़ेगा। इस प्रकार कुप्रवृत्तियाँ दूर हो जायेंगी और आचरण में सुधार होगा। इसके फलस्वरूप गुरुप्रेम में वृद्धि होकर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी। जब इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती है तो दैहिक बुद्धि नष्ट हो चैतन्यघन में लीन हो जाती है। वस्तुतः गुरु और ईश्वर में कोई पृथकत्व नहीं है और जो उन्हें भिन्न समझता है, वह तो निरा अज्ञानी है तथा उसे ईश्वर-दर्शन होना भी दुर्लभ है। इसलिए समस्त भेदभाव को भूल कर, गुरु और ईश्वर को अभिन्न समझना चाहिए। इस प्रकार गुरु सेवा करने से ईश्वर-कृपा प्राप्त होना निश्चित ही है और तभी वे हमारा चित्त शुद्ध कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करेंगे। सारांश यह है कि ईश्वर और गुरु को पहले अर्पण किये बिना हमें किसी भी इन्द्रियग्राह्य विषय का रसास्वादन न करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। फिर श्री साईबाबा की मनोहर सगुण मूर्त्ति सदैव आँखों के सम्मुख रहेगी, जिससे भक्ति, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र हो जायेगी। ध्यान प्रगाढ़ होने से क्षुधा और संसार के अस्तित्व की विस्मृति हो जायेगी और सांसारिक विषयों का आकर्षण स्वतः नष्ट होकर चित्त को सुख और शांति प्राप्त होगी।

सुदामा की कथा

उपर्युक्त घटना का वर्णन करते-करते हेमाडपंत को इसी प्रकार की सुदामा की कथा की याद आई, जो ऊपर वर्णित नियमों की पुष्टि करती है।

श्रीकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा अपने एक सहपाठी सुदामा के साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार कृष्ण और बलराम लकड़ियाँ लाने के लिए बन गये। सांदीपनि ऋषि की पत्नी ने सुदामा को भी उसी कार्य के निमित्त बन भेजा तथा तीनों विद्यार्थियों को खाने को कुछ चने भी उन्होंने सुदामा के द्वारा भेजे। जब कृष्ण और सुदामा की भेंट हुई तो कृष्ण ने कहा, "दादा,,

मुझे थोड़ा जल दीजिये, प्यास अधिक लग रही है।" सुदामा ने कहा, "**भूखे पेट जल पीना हानिकारक होता है,** इसलिए पहले कुछ देर विश्राम कर लो।" सुदामा ने चने के संबंध में न कोई चर्चा की और न कृष्ण को उनका भाग ही दिया। कृष्ण थके हुए तो थे ही; इसलिए सुदामा की गोद में अपना सिर रखते ही वे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गये। तभी सुदामा ने अवसर पाकर चने चबाना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में अचानक कृष्ण पूछ बैठे कि "दादा, तुम क्या खा रहे हो और यह कड़कड़ की ध्वनि कैसी हो रही है?" सुदामा ने उत्तर दिया कि "यहाँ खाने को है ही क्या? मैं तो शीत से काँप रहा हूँ और इसलिए मेरे दाँत कड़कड़ बज रहे हैं। देखो तो, मैं अच्छी तरह से विष्णुसहस्रनाम भी उच्चारण नहीं कर पा रहा हूँ।" यह सुनकर अन्तर्यामी कृष्ण ने कहा कि "दादा, मैंने अभी स्वप्न में देखा कि एक व्यक्ति दूसरे की वस्तुएँ खा रहा है। जब उससे इस विषय में प्रश्न किया गया तो उसने उत्तर दिया कि "मैं खाक (धूल) खा रहा हूँ।" तब प्रश्नकर्ता ने कहा, "ऐसा ही हो" (एवमस्तु)। दादा, यह तो केवल स्वप्न था, **मुझे तो ज्ञात है कि तुम मेरे बिना अन्न का दाना भी ग्रहण नहीं करते,** परंतु श्रम के वशीभूत होकर मैंने तुम से ऐसा प्रश्न किया था।" यदि सुदामा किंचित् मात्र भी कृष्ण की सर्वज्ञता से परिचित होते तो वे इस भाँति आचरण कभी न करते। अतः उन्हें इसका फल भोगना ही पड़ा। श्रीकृष्ण के लँगोटिया मित्र होते हुए भी सुदामा को अपना शेष जीवन दरिद्रता में व्यतीत करना पड़ा, परन्तु केवल एक ही मुट्ठी रूखे चावल (पोहा), जो उनकी स्त्री सुशीला ने अत्यन्त परिश्रम से उपार्जित किए थे, भेंट करने पर श्रीकृष्णजी बहुत प्रसन्न हो गये और उन्हें उसके बदले में सुवर्णनगरी प्रदान कर दी। जो दूसरों को दिये बिना एकांत में खाते हैं, उन्हें इस कथा को सदैव स्मरण रखना चाहिए।

श्रुति भी इस मत का प्रतिपादन करती है कि प्रथम ईश्वर को ही अर्पण करें तथा उच्छिष्ट हो जाने के उपरांत ही उसे ग्रहण करें। यही शिक्षा बाबा ने हास्य के रूप में दी है।

अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई

अब श्री. हेमाडपंत एक दूसरी हास्यपूर्ण कथा का वर्णन करते हैं, जिसमें बाबा ने शान्ति-स्थापन का कार्य किया है। दामोदर घनश्याम बाबरे, उपनाम अण्णा चिंचणीकर बाबा के भक्त थे। वे सरल, सुदृढ़ और निर्भीक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे निडरतापूर्वक स्पष्ट भाषण करते और व्यवहार में सदैव नगद नारायण-से थे। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि

से वे रूखे और असहिष्णु प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से कपटहीन और व्यवहार-कुशल थे। इसी कारण उन्हें बाबा विशेष प्रेम करते थे। सभी भक्त अपनी-अपनी इच्छानुसार बाबा के अंग-अंग को दबा रहे थे। बाबा का हाथ कठ़ड़े पर रखा हुआ था। दूसरी ओर एक वृद्ध विधवा उनकी सेवा कर रही थीं, जिनका नाम वेणुबाई कौजलगी था। बाबा उन्हें 'माँ' शब्द से सम्बोधित करते तथा अन्य लोग उन्हें मौसीबाई कहते थे। वे एक शुद्ध हृदय की वृद्ध महिला थीं। वे उस समय दोनों हाथों की अँगुलियाँ मिलाकर बाबा के शरीर को मसल रही थीं। जब वे बलपूर्वक उनका पेट दबातीं तो पेट और पीठ का प्रायः एकीकरण हो जाता था। बाबा भी इस दबाव के कारण यहाँ-वहाँ सरक रहे थे। अण्णा दूसरी ओर सेवा में व्यस्त थे। मौसीबाई का सिर हाथों की परिचालन क्रिया के साथ नीचे-ऊपर हो रहा था। जब इस प्रकार दोनों सेवा में जुटे थे तो अनायास ही मौसीबाई का मुख अण्णा के अति निकट आ गया। मौसीबाई विनोदी प्रकृति की होने के कारण ताना देकर बोलीं कि "यह अण्णा बहुत बुरा व्यक्ति है और यह मेरा चुम्बन करना चाहता है। इसके केश तो पक गये हैं, परन्तु मेरा चुंबन करने में इसे तनिक भी लज्जा नहीं आती है।" यह सुनकर अण्णा क्रोधित होकर बोले, "तुम कहती हो कि मैं एक वृद्ध और बुरा व्यक्ति हूँ। क्या मैं मूर्ख हूँ? तुम खुद ही छेड़खानी करके मुझसे झगड़ा कर रही हो? वहाँ उपस्थित सब लोग इस विवाद का आनन्द ले रहे थे। बाबा का स्नेह तो दोनों पर था, इसलिये उन्होंने कुशलतापूर्वक विवाद का निपटारा कर दिया। वे प्रेमपूर्वक बोले, "अरे अण्णा, व्यर्थ ही क्यों झगड़ रहे हो? मेरी समझ में नहीं आता कि माँ का चुम्बन करने में दोष या हानि ही क्या है?"

बाबा के शब्दों को सुनकर दोनों शान्त हो गये और सब उपस्थित लोग जी भरकर ठहाका मारकर बाबा के विनोद का आनन्द लेने लगे।

बाबा की भक्त-परायणता

बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही सेवा करने दिया करते थे और इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप उन्हें सहन न था। एक अन्य अवसर पर मौसीबाई बाबा का पेट बलपूर्वक मसल रही थीं, जिसे देख कर दर्शकगण व्यग्र होकर मौसीबाई से कहने लगे कि "माँ! कृपा कर धीरे-धीरे ही पेट दबाओ। इस प्रकार मसलने से तो बाबा की अंतड़ियाँ और नाड़ियाँ ही टूट जावेंगी।" वे इतना कह भी न पाये थे कि बाबा अपने आसन से तुरन्त उठ बैठे और अंगारे के समान लाल आँखें कर क्रोधित हो गये। साहस किसे था, जो उन्हें रोके? उन्होंने दोनों हाथों से सटके का एक छोर पकड़ नाभि में लगाया

और दूसरा छोर जमीन पर रख उसे पेट से धक्का देने लगे। सटका (सोटा) लगभग २ या ३ फुट लम्बा था। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पेट में छिद्र कर प्रवेश कर जायेगा। लोग.शोकित एवं भयभीत हो उठे कि अब पेट फटने ही वाला है। बाबा अपने स्थान पर दृढ़ हो, उसके अत्यन्त समीप होते जा रहे थे और प्रतिक्षण पेट फटने की आशंका हो रही थी। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। वे आश्चर्यचकित और भयभीत हो ऐसे खड़े थे, मानो गूँगों का समुदाय हो। यथार्थ में भक्तगण का संकेत मौसीबाई को केवल इतना ही था कि वे सहज रीति से सेवा-शुश्रूषा करें। किसी की इच्छा बाबा को कष्ट पहुँचाने की न थी। भक्तों ने तो यह कार्य केवल सद्‌भावना से प्रेरित होकर ही किया था। परन्तु बाबा तो अपने कार्य में किसी का हस्तक्षेप कणमात्र भी न होने देना चाहते थे। भक्तों को तो आश्चर्य हो रहा था कि शुभ भावना से प्रेरित कार्य दुर्गति में परिणत हो गया और वे केवल दर्शक बने रहने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते थे? भाग्यवश बाबा का क्रोध शान्त हो गया और सटका छोड़कर वे पुनः आसन पर विराजमान हो गये। इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि अब दूसरों के कार्य में कभी भी हस्तक्षेप न करेंगे और सबको उनकी इच्छानुसार ही बाबा की सेवा करने देंगे। केवल बाबा ही सेवा का मूल्य आँकने में समर्थ थे।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - २५

(१) दामू अण्णा कासार-अहमदनगर के रुई और अनाज के सौदे (२) आम्र-लीला।

प्राक्कथन

जो अकारण ही सभी पर दया करते हैं तथा समस्त प्राणियों के जीवन व आश्रयदाता हैं, जो परब्रह्म के पूर्ण अवतार हैं, ऐसे अहेतुक दयासिन्धु और महान् योगिराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर अब हम यह अध्याय आरम्भ करते हैं।

श्री साई की जय हो! वे सन्त चूड़ामणि, समस्त शुभ कार्यों के उद्‌गम स्थान और हमारे आत्माराम तथा भक्तों के आश्रयदाता हैं। हम उन साईनाथ की चरण-वन्दना करते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया है।

श्री साईबाबा अनिर्वचनीय प्रेमस्वरूप हैं। हमें तो केवल उनके चरणकमलों में दृढ़ भक्ति ही रखनी चाहिये। जब भक्त का विश्वास दृढ़ और भक्ति परिपक्व हो जाती है तो उसका मनोरथ भी शीघ्र ही सफल हो जाता है। जब हेमाडपंत को साईचरित्र तथा साई लीलाओं के रचने की तीव्र उत्कंठा हुई तो बाबा ने तुरन्त ही वह पूर्ण कर दी। जब उन्हें स्मृति-पत्र (Notes) इत्यादि रखने की आज्ञा हुई तो हेमाडपंत में स्फूर्ति, बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा कार्य करने की क्षमता स्वयं ही आ गई। वे कहते हैं कि मैं इस कार्य के सर्वदा अयोग्य होते हुए भी श्री साई के शुभाशीर्वाद से इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका। फलस्वरूप यह ग्रन्थ 'श्री साई सच्चरित्र' आप लोगों को उपलब्ध हो सका, जो एक निर्मल स्रोत या चन्द्रकान्तमणि के ही सदृश है, जिसमें से सदैव साई-लीलारूपी अमृत झरा करता है, ताकि पाठकगण जी भर कर उसका पान करें।

जब भक्त पूर्ण अन्तःकरण से श्री साईबाबा की भक्ति करने लगता है तो बाबा उसके समस्त कष्टों और दुर्भाग्यों को दूर कर स्वयं उसकी रक्षा करने लगते हैं। अहमदनगर

के श्री. दामोदर साँवलाराम रासने कासार की निम्नलिखित कथा उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती है।

दामू अण्णा

पाठकों को स्मरण होगा कि इन महाशय का प्रसंग छठवें अध्याय में शिरडी के रामनवमी उत्सव के प्रसंग में आ चुका है। ये लगभग सन् १८९५ में शिरडी पधारे थे, जब कि रामनवमी उत्सव का प्रारम्भ ही हुआ था और उसी समय से वे एक जरीदार बढ़िया ध्वज इस अवसर पर भेंट करते तथा वहाँ एकत्रित गरीब भिक्षुकों को भोजनादि कराया करते थे।

दामू अण्णा के सौदे

(१) रुई का सौदा

दामू अण्णा को बम्बई से उनके एक मित्र ने लिखा कि वह उनके साथ साझेदारी में रुई का सौदा करना चाहते हैं, जिसमें लगभग दो लाख रुपयों का लाभ होने की आशा है। सन् १९३६ में नरसिंह स्वामी को दिये गये एक वक्तव्य में दामू अण्णा ने बतलाया कि रुई के सौदे का यह प्रस्ताव बम्बई के एक दलाल ने उनसे किया था, जो कि साझेदारी से हाथ खींचकर मुझ पर ही सारा भार छोड़ने वाला था। (भक्तों के अनुभव भाग ११, पृष्ठ ७५ के अनुसार)। दलाल ने लिखा था कि धंधा अति उत्तम है और हानि की कोई आशंका नहीं। ऐसे स्वर्णिम अवसर को हाथ से न खोना चाहिए। दामू अण्णा के मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, परन्तु स्वयं कोई निर्णय करने का साहस वे न कर सके। उन्होंने इस विषय में कुछ विचार तो अवश्य कर लिया, परन्तु बाबा के भक्त होने के कारण पूर्ण विवरण सहित एक पत्र शामा को लिख भेजा, जिसमें बाबा से परामर्श प्राप्त करने की प्रार्थना की। यह पत्र शामा को दूसरे ही दिन मिल गया, जिसे दोपहर के समय मसजिद में जाकर उन्होंने बाबा के समक्ष रख दिया। शामा से बाबा ने पत्र के सम्बन्ध में पूछताछ की। उत्तर में शामा ने कहा कि "अहमदनगर के दामू अण्णा कासार आप से कुछ आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं।" बाबा ने पूछा कि "वह इस पत्र में क्या लिख रहा है और उसने क्या योजना बनाई है? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आकाश को छूना चाहता है। उसे जो कुछ भी भगवत्कृपा से प्राप्त है, वह उससे सन्तुष्ट नहीं है। अच्छा, पत्र पढ़कर तो सुनाओ।" शामा ने कहा, "जो कुछ आपने अभी कहा, वही तो पत्र में भी लिखा हुआ है। हे देवा! आप यहाँ शान्त और स्थिर बैठे रहकर भी भक्तों को उद्विग्न कर देते हैं और जब वे अशान्त हो जाते हैं

तो आप उन्हें आकर्षित कर, किसी को प्रत्यक्ष तो किसी को पत्रों द्वारा यहाँ खींच लेते हैं। जब आपको पत्र का आशय विदित ही है तो फिर मुझे पत्र पढ़ने को क्यों विवश कर रहे हैं?" बाबा कहने लगे कि "शामा! तुम तो पत्र पढ़ो। मैं तो ऐसे ही अनापशनाप बकता हूँ। मुझ पर कौन विश्वास करता है?" तब शामा ने पत्र पढ़ा और बाबा उसे ध्यानपूर्वक सुनकर चिंतित हो कहने लगे कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सेठ (दामू अण्णा) पागल हो गया है। उसे लिख दो कि "उसके घर किसी वस्तु का अभाव नहीं है। इसलिये उसे आधी रोटी में ही सन्तोष कर लाखों के चक्कर से दूर ही रहना चाहिये।" शामा ने उत्तर लिखकर भेज दिया, जिसकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक दामू अण्णा कर रहे थे। पत्र पढ़ते ही लाखों रुपयों के लाभ होने की उनकी आशा पर पानी फिर गया। उन्हें उस समय ऐसा विचार आया कि बाबा से परामर्श कर उन्होंने भूल की है। परन्तु शामा ने पत्र में संकेत कर दिया था कि "देखने और सुनने में फर्क हुआ करता है। इसलिये श्रेयस्कर तो यही होगा कि स्वयं शिरडी आकर बाबा की आज्ञा प्राप्त करो।" बाबा से स्वयं अनुमति लेना उचित समझकर वे शिरडी आये। बाबा के दर्शन कर उन्होंने चरण सेवा की। परन्तु बाबा के सम्मुख सौदे वाली बात करने का साहस वे न कर सके। उन्होंने संकल्प किया कि यदि उन्होंने कृपा कर दी तो इस सौदे में से कुछ लाभांश उन्हें भी अर्पण कर दूँगा। यद्यपि यह विचार दामू अण्णा बड़ी गुप्त रीति से अपने मन में कर रहे थे तो भी त्रिकालदर्शी बाबा से क्या छिपा रह सकता था? बालक तो मिष्ठान्न माँगता है, परन्तु उसकी माँ उसे कड़वी ही औषधि देती है, क्योंकि मिठाई स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है और इस कारण वह बालक के कल्याणार्थ उसे समझा-बुझाकर कड़वी औषधि पिला दिया करती है। बाबा एक दयालु माँ के समान थे। वे अपने भक्तों का वर्तमान और भविष्य जानते थे। इसलिये उन्होंने दामू अण्णा के मन की बात जानकर कहा कि "बापू! मैं अपने को इन सांसारिक झंझटों में फँसाना नहीं चाहता।" बाबा की अस्वीकृति जानकर दामू अण्णा ने यह विचार त्याग दिया।

(२) अनाज का सौदा

तब उन्होंने अनाज, गेहूँ, चावल आदि अन्य वस्तुओं का धन्धा आरम्भ करने का विचार किया। बाबा ने इस विचार को भी समझ कर उनसे कहा कि तुम रुपये का ५ सेर खरीदोगे और ७ सेर को बेचोगे। इसलिये उन्हें इस धन्धे का भी विचार त्यागना पड़ा। कुछ समय तक तो अनाजों का भाव चढ़ता ही गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि संभव है, बाबा की भविष्यवाणी असत्य निकले। परन्तु दो-एक मास के पश्चात् ही सब स्थानों में पर्याप्त वृष्टि हुई, जिसके फलस्वरूप भाव अचानक ही गिर गये और जिन

लोगों ने अनाज संग्रह कर लिया था, उन्हें यथेष्ठ हानि उठानी पड़ी। पर दामू अण्णा इस विपत्ति से बच गये। यह कहना व्यर्थ न होगा कि रुई का सौदा, जो कि उस दलाल ने अन्य व्यापारी की साझेदारी में किया था, उसमें उसे अधिक हानि हुई। बाबा ने उन्हें बड़ी विपत्तियों से बचा लिया है, यह देखकर दामू अण्णा का साईचरणों में विश्वास दृढ़ हो गया और वे जीवनपर्यन्त बाबा के सच्चे भक्त बने रहे।

आम्रलीला

एक बार गोवा के एक मामलतदार ने, जिनका नाम राले था, लगभग ३०० आमों का एक पार्सल शामा के नाम शिरडी भेजा। पार्सल खोलने पर प्रायः सभी आम अच्छे निकले। भक्तों में इनके वितरण का कार्य शामा को सौंपा गया। उनमें से बाबा ने चार आम दामू अण्णा के लिये पृथक् निकाल कर रख लिये। दामू अण्णा की तीन स्त्रियाँ थीं। परन्तु अपने दिये हुये वक्तव्य में उन्होंने बतलाया था कि उनकी केवल दो ही स्त्रियाँ थीं। वे सन्तानहीन थे, इस कारण उन्होंने अनेक ज्योतिषियों से इसका समाधान कराया और स्वयं भी ज्योतिष शास्त्र का थोड़ा सा अध्ययन कर ज्ञात कर लिया कि जन्म कुण्डली में एक पापग्रह के स्थित होने के कारण इस जीवन में उन्हें सन्तान का मुख देखने का कोई योग नहीं है। परन्तु बाबा के प्रति तो उनकी अटल श्रद्धा थी। पार्सल मिलने के दो घण्टे पश्चात् ही वे पूजनार्थ मसजिद में आये। उन्हें देख कर बाबा कहने लगे कि लोग आमों के लिये चक्कर काट रहे हैं, परन्तु ये तो दामू के हैं। जिसके हैं, उन्हीं को खाने और मरने दो। इन शब्दों को सुन दामू अण्णा के हृदय पर वज्राघात सा हुआ, परन्तु म्हालसापति (शिरडी के एक भक्त) ने उन्हें समझाया कि इस 'मृत्यु' शब्द का अर्थ अहंकार के विनाश से है और बाबा के चरणों की कृपा से तो वह आशीर्वादस्वरूप है, तब वे आम खानेको तैयार हो गये। इस पर बाबा ने कहा कि "वे तुम न खाओ, उन्हें अपनी छोटी स्त्री को खाने दो। इन आमों के प्रभाव से उसे चार पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी।" यह आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने वे आम ले जाकर अपनी छोटी स्त्री को दिये। धन्य है श्री साईबाबा की लीला, जिन्होंने भाग्य-विधान पलट कर उन्हें सन्तान-सुख दिया। बाबा की स्वेच्छा से दिये वचन सत्य हुये, ज्योतिषियों के नहीं।

बाबा के जीवन काल में उनके शब्दों ने लोगों में अधिक विश्वास और महिमा स्थापित की, परन्तु महान् आश्चर्य है कि उनके समाधिस्थ होने के उपरान्त भी उनका प्रभाव पूर्ववत् ही है। बाबा ने कहा कि "**मुझ पर पूर्ण विश्वास रखो। यद्यपि मैं देहत्याग भी कर दूँगा, परन्तु फिर भी मेरी अस्थियाँ आशा और विश्वास का संचार करती**

रहेंगी। केवल मैं ही नहीं, मेरी समाधि भी वार्तालाप करेगी, चलेगी, फिरेगी और उन्हें आशा का सन्देश पहुँचाती रहेगी, जो अनन्य भाव से मेरे शरणागत होंगे। निराश न होना कि मैं तुमसे विदा हो जाऊँगा। तुम सदैव मेरी अस्थियों को भक्तों के कल्याणार्थ ही चिंतित पाओगे। यदि मेरा निरन्तर स्मरण और मुझ पर दृढ़ विश्वास रखोगे तो तुम्हें अधिक लाभ होगा।"

प्रार्थना

एक प्रार्थना कर हेमाडपंत यह अध्याय समाप्त करते हैं।

"हे साई सद्गुरु! भक्तों के कल्पतरु! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आपके अभय चरणों की हमें कभी विस्मृति न हो। आपके श्री चरण कभी भी हमारी दृष्टि से ओझल न हों। हम इस जन्म-मृत्यु के चक्र से इस संसार में अधिक दुःखी हैं। अब दया कर इस चक्र से हमारा शीघ्र उद्धार कर दो। हमारी इन्द्रियाँ, जो विषय-पदार्थों की ओर आकर्षित हो रही हैं, उनकी बाह्य प्रवृत्ति से रक्षा कर, उन्हें अंतर्मुखी बना कर हमें आत्म-दर्शन के योग्य बना दो। जब तक हमारी इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति और चंचल मन पर अंकुश नहीं है, तब तक आत्मसाक्षात्कार की हमें कोई आशा नहीं है। हमारे पुत्र और मित्र, कोई भी अन्त में हमारे काम न आयेंगे। हे साई! हमारे तो एकमात्र तुम्हीं हो, जो हमें मोक्ष और आनन्द प्रदान करोगे। हे प्रभु! हमारी तर्कवितर्क तथा अन्य कुप्रवृत्तियों को नष्ट कर दो। हमारी जिह्वा सदैव तुम्हारे नामस्मरण का स्वाद लेती रहे। हे साई! हमारे अच्छे बुरे सब प्रकार के विचारों को नष्ट कर दो। प्रभु! कुछ ऐसा कर दो कि जिससे हमें अपने शरीर और गृह में आसक्ति न रहे। हमारा अहंकार सर्वथा निर्मूल हो जाय और हमें एकमात्र तुम्हारे ही नाम की स्मृति बनी रहे तथा शेष सबका विस्मरण हो जाय। हमारें मन की अशांन्ति को दूर कर, उसे स्थिर और शान्त करो। हे साई! यदि तुम हमारे हाथ अपने हाथ में ले लोगे तो अज्ञानरूपी रात्रि का आवरण शीघ्र दूर हो जायेगा और हम तुम्हारे ज्ञान-प्रकाश में सुखपूर्वक विचरण करने लगेंगे। यह जो तुम्हारा लीलामृत पान करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ तथा जिसने हमें अखण्ड निद्रा से जागृत कर दिया है, यह तुम्हारी ही कृपा और हमारे गत जन्मों के शुभ कर्मों का ही फल है।"

विशेषः - इस सम्बन्ध में श्री. दामू अण्णा के उपरोक्त कथन को उद्धृत किया जाता है, जो ध्यान देने योग्य है- "एक समय जब मैं अन्य लोगोंसहित बाबा के श्रीचरणों के समीप बैठा था तो मेरे मन में दो प्रश्न उठे। उन्होंने उनका उत्तर इस प्रकार दिया - (१)

जो जनसमुदाय श्रीसाई के दर्शनार्थ शिरडी आता है, क्या उन सभी को लाभ पहुँचता है? इसका उन्होंने उत्तर दिया कि "बौर लगे आम वृक्ष की ओर देखो। यदि सभी बौर फल बन जायें तो आमों की गणना भी न हो सकेगी। परन्तु क्या ऐसा होता है? बहुत-से बौर झर कर गिर जाते हैं। कुछ फले और बढ़े भी तो आँधी के झकोरों से गिरकर नष्ट हो जाते हैं और उनमें से कुछ थोड़े ही शेष रह जाते हैं।" (२) दूसरा प्रश्न मेरे स्वयं के विषय में था। यदि बाबा ने निर्वाण-लाभ कर लिया तो मैं बिलकुल ही निराश्रित हो जाऊँगा, तब मेरा क्या होगा? इसका बाबा ने उत्तर दिया कि **"जब और जहाँ भी तुम मेरा स्मरण करोगे, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।"** इन वचनों को उन्होंने सन् १९१८ के पूर्व भी निभाया है और सन् १९१८ के पश्चात् आज भी निभा रहे हैं। वे अभी भी मेरे ही साथ रहकर मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। यह घटना लगभग सन् १९१०-११ की है। उसी समय मेरा भाई मुझसे पृथक् हुआ और मेरी बहन की मृत्यु हो गई। मेरे घर में चोरी हुई और पुलिस जाँच-पड़ताल कर रही थी। इन्हीं सब घटनाओं ने मुझे पागल-सा बना दिया था।"

"मेरी बहन का स्वर्गवास होने के कारण मेरे दुःख का पारावार न रहा और जब मैं बाबा की शरण गया तो उन्होंने अपने मधुर उपदेशों से मुझे सान्त्वना देकर अप्पा कुलकर्णी के घर पूरणपोली खिलाई तथा मेरे मस्तक पर चन्दन लगाया।"

"जब मेरे घर चोरी हुई और मेरे ही एक तीसवर्षीय मित्र ने मेरी स्त्री के गहनों का सन्दूक, जिसमें मंगलसूत्र और नथ आदि थे, चुरा लिये, तब मैंने बाबा के चित्र के समक्ष रुदन किया और उसके दूसरे ही दिन वह व्यक्ति स्वयं गहनों का सन्दूक मुझे लौटाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा।"

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ॥

ॐ